मुख्य बिंदु

गुरु का गुरुत्वाकर्षण

कई बार हम किसी व्यक्ति से ऐसे मिलते हैं कि हम स्वयं को उसके समक्ष बिना किसी कारण के, बिना किसी उधेड़-बुन के, ज्यों का त्यों छोड़ देते हैं। परत दर परत स्वयं को उघाड़ देते हैं। न छिपाते हैं न हिचकिचाते हैं। हम स्वयं ही नहीं समझ पाते कि अचानक किसी से इतना लगाव, इतना अपनापन और इतना भरोसा क्यों? हम बस उसके होकर रह जाते हैं। कुछ सीखने और समझने के लिए मन स्वतः ही बंद किवाड़ खोल देता है। ऐसा लगता है कि जैसे मिल गई मंजिल, मिल गया किनारा, मिट गई थकान। अब कहीं और रुख करने की जरूरत नहीं। अब मैं वहां पहुंच गया हूं जहां मुझे घंटों कुछ कहने या समझाने की जरूरत नहीं। समय और ऊर्जा को गंवाने की आवश्यकता नहीं। सामने वाला मेरी अनकही को, खामोशी को कहने में माहिर है, मेरे उलझे हुए भावों को सुलझाने में माहिर है, आंखों में डूबे अश्कों को उबारने की कला जानता है। उससे बात करके, उसकी सुनके ऐसा लगता है अरे यह तो मुझे कहना था। यह शब्द, यह बोल, यह सिसकियां, यह कश्मकश, यह प्रश्न और ये जिज्ञासाएं तो मेरी थीं। यह अनुभव, यह अफसाना तो मेरा था, सामने वाला इनसे कैसे और कब वाकिफ हो गया? वो मुझे मुझसे बेहतर कैसे जानता है? वो मुझे मेरी संतुष्टि के तल पर कैसे अभिव्यक्त कर रहा है? कैसे मेरे भटकाव को विराम, मेरे इंतजार को परिणाम और गुमराहपन को राह दे रहा है!

ऐसा कोई और नहीं, गुरु ही हो सकता है। और ये सब कोई चमत्कार नहीं गुरु की अपनी विशेषता उसका अपना गुरुत्वाकर्षण है। जिसके प्रभाव से सामने वाला बिना किसी निमंत्रण के खिंचा चला जाता है और स्वयं को पूर्ण समर्पित कर देता है। स्वयं का समर्पण ही गुरु से निकटता का माध्यम है। परंतु किसी अनजान, अपरिचित के समक्ष यह समर्पण कैसे संभव हो जाता है? कैसे जीवन बने-बनाए फलसफों को छोड़कर नए रास्तों पर चलने को राजी हो जाता है? ये आस्था कहां से पैदा होने लग जाती है? क्यों किसी के सामने बेचैन मन शांत होने लग जाता है? क्यों किसी से मिलकर जीने की, कुछ नया होने की इच्छा पैदा होती है? क्यों हम स्वयं को इतनी बेफिक्री से दूसरे के हाथों सौप देते हैं?

यही तो गुरु का गुरुत्वाकर्षण है कि एक बार समग्रता से जिसने स्वयं को छोड़ दिया वो बस उसका हो जाता है। फिर उसको कुछ और नहीं भाता। वास्तविक गुरु की पहचान ही यह है कि जो उसके आसपास से गुजर जाता है वह उसका हो जाता है। जो उसकी आंख से आंख मिला लेता है उसका हरण हो जाता है और गुरु उसकी सारी बाधाएं हर लेता है। यही सार है गुरु शिष्य के संबंध का। यही स्थिति है पूर्ण समर्पण की। यही परिणाम है शिष्य की यात्रा का। यही सबूत है श्रद्धा और विश्वास का।

गुरु के भीतर ऐसा क्या है जो उसे आम आदमी से अलग करता है, कौन झांकता है उसकी आंखों से जो हमें बस में कर लेता है? कौन लिप्त है उसकी देह में जो उसके आकर्षण को कई गुना कर देता है? कौन विराजता है उसकी जीह्वा पर कि जब भी होठ खोलता है तो अमृत बरसता है। क्या है गुरु में जो शिष्य को खींच लाता है? क्या है गुरु में जिससे शिष्य जुदा होना भी चाहे तो वापस लौट-लौट आता है? कौन सी कशिश, कौन सा गुण कौन सा आकर्षण है जो गुरु को गुरु बनाता है? वो कौन सी कैसी चुंबक है जो स्थान की दूरी लुप्त कर देती है और अपनी और खींच लेती है?

वह है गुरु का ज्ञान, उसका अनुभव, उसकी साधना और परमात्मा से उसकी आत्मा की संधि। गुरु वह शक्ति है जिसका दर्शन बंद आंखों से भी चारों पहर बना रहता है। गुरु वो है जिसका स्मरण मात्र ही सभी दुखों से उभार देता है। जिसके अनछुए स्पर्श के सहारे हम भीतर जगत् की यात्रा निसंकोच कर लेते हैं। जिसके शब्दों में माधुर्य बसता है और मौन में सुकून

समाता है। जिसके आगे हम मिटने को, झुकने को राजी हैं। गुरु वह है जो हमें हमारी सुध दिलाता है और हमें हमसे पार ले जाता है।

वह गुरु है जो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है। गुरु प्रतीक है ज्ञान रूपी प्रकाश का, गुरु के भीतर विराट आकाश मौजूद है तो रत्नों से परिपूर्ण सागर की गहराईयां भी विद्यमान। गुरु देने की भाषा जानता है, गुरु समझने-समझाने का हुनर जानता है, गुरु बिना बोले बहुत कुछ कह जाता है। गुरु शिष्य से कुछ छीनता भी है तो भले के लिए। गुरु की हर हरकत, हर निर्णय, हर क्रिया-प्रतिक्रिया शिष्य की भलाई के लिए होती है। गुरु का हर इशारा, हर कदम महत्वपूर्ण होता है, उसमें कोई रहस्य, कोई राज, कोई सीख तो कोई भलाई छिपी होती है। बस जरूरत है तो उसे भीतर की आंख से देखने की।

गुरु माली है और शिष्य वृक्ष। गुरु माली की तरह बीज की तलाश करता है फिर उसे उचित समय पर उचित भूमि में रोपित करता है। समय-समय पर उसे जरूरत अनुसार खाद्य-पानी देता है। बीज धीरे-धीरे पौधा बनता है। इस अवस्था में भी माली पौधे की फिक्र और देखभाल में लगा रहता है। कभी प्रतिकूल मौसम तो कभी जंगली जानवर, तो कभी कीटाणुओं से होने वाली बीमारियों से उसे बचाता है। जब वह पौधा बड़ा पेड़ बन जाता है तो माली उसे पानी देना बंद कर देता है। वृक्ष माली की मदद से अपनी जड़ों को स्वयं इतनी गहराईयों तक फैला चुका होता है कि वह अपना इंतजाम अपनी रक्षा स्वयं करना सीख जाता है। अब वह देने के काबिल हो जाता है। यात्रियों को छाया देता है तो पक्षियों को उनका आशियां, फल-फूल देता है, तो अपने अर्क एवं जड़ों द्वारा औषधि के रूप में प्रयोग होता है। हरियाली फैलाकर वातावरण को प्रदूषण से मुक्त रखता है तो वर्षा का माध्यम बन धरती एंव धरती पर रहने वाले प्राणियों की प्यास बुझाता है।

वृक्ष की तरह गुरु भी शिष्य को एक समय, एक स्थिति और एक हद तक सींचता है। गुरु तभी तक देता है जब तक उसे जरूरी लगता है। गुरु शिष्य को मात्र जड़ ही नहीं देता बल्कि उन जड़ों को उनका विस्तार भी प्रदान करता है, जड़ों को उनका सागर दे देता है। फिर गुरु शिष्य को पेड़ की तरह अकेले जीने को छोड़ देता है, और देने की, बांटने की, झुकने की कला सिखा देता है।

फूल पेड़ के होते हैं पर सुगंध उसमें माली की होती है, पत्तियां स्वयं वृक्ष की होती है पर उनमें सौंदर्य माली का होता है। पेड़ का आकार, उसका घनत्व, उसकी छाया सब वृक्ष का होता है पर देख-रेख सब माली की होती है। सबको पेड़ की ऊंचाई दिखती है परंतु उसकी गहरी जड़ें नहीं दिखती। सबको पेड़ पर फल दिखते हैं। परंतु बीज को फल में रूपांतरित करने वाला माली, उसकी मेहनत, उसका पसीना नहीं दिखता। गुरु भी ठीक माली की ही तरह होता है और शिष्य वृक्ष की तरह। शिष्य की हर यात्रा में, हर उपलब्धि में, हर भाव-भंगिमा एवं रूपांतरण में गुरु का योगदान होता है जो दिखता नहीं है पर जड़ों की तरह शिष्य के जीवन में सदा संलग्न रहता है।

वृक्ष सदा देता है उसके पास जो भी है, उससे जो भी पैदा होता है या अलग होता है सब का किसी न किसी रूप में उपयोग होता है। वृक्ष देने की भाषा जानता है। वृक्ष को पत्थर मारो या लाठी वह फल ही देगा क्योंकि वृक्ष का स्वभाव देना है।

शिष्य भी देना सीख जाता है, जो पाया है उसे बांटना, लौटाना, सीख जाता है। कैसे भी, उससे कुछ भी कहा जाए उसके हाथ आशीर्वाद के लिए ही उठते हैं और वाणी साधुवाद के लिए। देह की हर हरकतों और वाणी के प्रत्येक शब्द में गुरु ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान होता है, अंगूठे से शीष तक सिर्फ रक्त नहीं गुरु की कृपा, उसका नाम भी संचारित होता है।

यही गुरु का आकर्षण है और यही गुरु का जीवन में चमत्कार। गुरु केंद्र है और शिष्य परिधि। बिना केंद्र के परिधि नहीं और बिना गुरु शिष्य का वजूद नहीं। धरती की तरह गुरु का भी एक गुरुत्वार्षण होता है जहां सारी की सारी फेंकी गई चीजें, किए गए प्रयास लौट-लौट कर वापस आते हैं। वृक्षों से झरता फूल, झरनों से बहता जल, वर्षा की नन्हीं बूंद, सूरज से छनती रोशनी सब नीचे धरती की ओर ही बहती है, मानो धरती को धन्यवाद दे रही हो, धरती के चरण स्पर्श कर आशीर्वाद ले रहे हों, अपनी कृतज्ञता को भिन्न-भिन्न रूपों एवं अवस्थाओं में व्यक्त करती है प्रकृति। यही इस धरती का सौंदर्य है और यही इस धरती पर पैदा होता है, बनता है, संवरता है। सभी की जड़ें, नसें, स्रोत एवं माध्यम इस धरती से किसी न किसी रूप में जुड़े हैं तभी तो सभी किसी न किसी रूप में पुनः लौट आते हैं। धरती का प्रगाढ़, अगाध प्रेम सभी को खींच लाता है। धरती के गर्भ में चुंबकीय तत्व उसके स्वयं की साधना, अंतर्यात्रा एवं अनेक रहस्यों का प्रतीक है जो चुंबक बन सबको अपनी ओर खींच लेता है।

गुरु भी धरती की ही तरह है जिसकी भूमि पर अनेकों फल-फूल और वृक्ष लगते हैं। इसीलिए गुरु में इतना आकर्षण है, गुरु में इतनी शक्ति है, गुरु धरती की तरह सहना जानता है तो पैदा करना भी जानता है।

गुरु का हृदय धरती की तरह विशाल है, कहीं कठोर तो कहीं संवेदनशील है। गुरु ऊर्जा का भंडार है। गुरु अपने ज्ञान और अपने अनुभव को स्थानांतरित करने की, सौंपने की कला जानता है। गुरु के भीतर इस सृष्टि को बनाने वाले का वास है। गुरु का देह मंदिर है जिसमें परमात्मा विराजमान है। गुरु बांध है परमात्मा और आत्मा के बीच का। गुरु माध्यम है जिसके सहारे परमात्मा उतरता है। गुरु आशा की किरण है जिसके आसरे शिष्य पनपता है। गुरु माला की वह डोर है जिसके सहारे शिष्य प्रभु के गले से लिपटा रहता है। गुरु का यही गुरुत्वाकर्षण, शिष्य को गुरु से सदा बांधे रखता है।

— शशिकांत

(लेखक साधना-पथ पत्रिका के संपादन-कार्य में संलग्न हैं)